जैनभक्त कवि बनारसीदास के काव्य-सिद्धान्त

डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त

हिन्दी-साहित्य के भक्तिकाल में चौदहवीं शती से सत्रहवीं शती तक भक्ति और नीति विषयक काव्य-रचना में अनेक जैन कवियों ने योग दिया था। इनमें सधारु और शालिभद्र सूरि ने प्रबन्धकाव्य-रचना में और पद्मनाभ, ठाकुर सी, बनारसीदास, राजसमुद्र तथा कुशलबीर ने मुख्यतः नीतिकाव्य-रचना में भाग लिया। कवित्व-गुण की दृष्टि से इनमें बनारसीदास का स्थान सर्वप्रमुख है।

कवि बनारसीदास का जन्म १५८६ ई० में उत्तरप्रदेश में ज़िला जौनपुर में हुआ था। वे जहाँगीर और शाहजहाँ के समकालीन थे और दोनों के दरबार में उनका विशेष सम्मान था। सत्य, अहिंसा, क्षमा, शील आदि नैतिक गुणों पर पद्य-रचना के साथ ही उन्होंने जैन धर्म के अनुरूप भक्तिकाव्य की भी मनोयोग से रचना की थी। उनके चिंतन में मानववाद पर बल रहता था, फलस्वरूप उनकी रचनाओं को पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त थी। इसी सन्दर्भ में उन्होंने मुख्यतः काव्य-प्रयोजन, काव्य-हेतु और काव्य-वर्ण्य पर तथा संक्षेप में काव्य-शिल्प और सहृदय के विषय में विचार व्यक्त किए हैं, जो भक्तिकालीन चिन्तन-परम्परा के सर्वथा अनुरूप हैं।

आलोच्य कवि की तीन रचनाएँ, सुप्रसिद्ध हैं—नाटक समयसार, बनारसीविलास, अर्धकथानक। 'नाटक समयसार' स्वामी कुन्दकुन्दाचार्य की प्राकृत-रचना 'समयपाहुड़' के अमृतचन्द्र सूरि कृत संस्कृत-रूपान्तर पर आधारित है। 'बनारसीविलास' में 'सूक्त-मुक्तावली (सोमप्रभ सूरि के काव्य 'सिन्दूर प्रकर' का अनुवाद), 'अध्यात्म बत्तीसी', 'मोक्षपैड़ी', 'सिन्धु चतुर्दशी', 'नाममाला', 'कर्मछत्तीसी', 'सहस्रनाम', 'अष्टकगीत', 'वचनिका' आदि अड़तालीस कृतियाँ संकलित हैं। इनमें से काव्य-सिद्धान्तों का निरूपण विशेषत: 'नाटक समयसार' में हुआ है। यह उल्लेखनीय है कि इस कृति की 'उत्थानिका' और ग्रन्थान्त के कुछ छन्द ही बनारसीदास द्वारा रचित हैं।

काव्य-प्रयोजन

बनारसीदास ने काव्य-रचना के प्रयोजनों पर सुसम्बद्ध रूप में विचाराभिव्यक्ति नहीं की है, तथापि उनके स्फुट विचारों का समन्वय करने पर यह कहा जा सकता है कि अध्यात्म मार्ग का प्रतिपादन करने के कारण उन्होंने मनोविकार-नाश और मोक्षलाभ को भक्ति-काव्य के सहज परिणाम कहा है और 'नाटक समयसार' तथा कर्मप्रकृतिविधान' नामक ग्रन्थों में सम्यक् ज्ञान से विभूषित एवं चरित्रबल-प्रेरक सामग्री के समावेश का उल्लेख इन शब्दों में किया है :

(अ) **ग्यानकला उपजी अब मोहि, कहौं गुन नाटक आगम केरो।**
जासु प्रसाद सधै सिवमारग, वेगि मिटै भवबास बसेरो॥

(नाटक समयसार, उत्थानिका, पृष्ठ १२)

(आ) **मोख चलिबे को मौन करम कौ करै बौन,**
जाके रस-भौन बुध लौन ज्यों घुलत है।
गुन को गरंथ निरगुन को सुगम पंथ,
जाको जसु कहत सुरेश अकुलत है।
याही के जु पच्छी ते उड़त ग्यान गगन में,
याही के विपच्छी जगजाल में रुलत हैं।
हाटक सौ विमल विराटक सौ विसतार,
नाटक सुनत हीये फाटक खुलत हैं।

(नाटक समयसार, उत्थानिका, पृष्ठ १६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(इ) **ऐसौ परमागम बनारसी बखानै जामैं,**
ग्यान कौ निदान सुद्ध चारित की चोख है। (नाटक समयसार, उत्थानिका, पृष्ठ २९)

(ई) **जो जान भेद बखान सरदहि, शब्द अर्थ बिचारसी।**
सो होय कर्मविनाश निर्मल, शिवस्वरूप बनारसी। (बनारसीविलास, पृष्ठ १२४)

इन उक्तियों पर विचार करने के पूर्व द्वितीय अवतरण का स्पष्टीकरण अभीष्ट है। इसमें यह प्रतिपादित किया गया है कि 'समयसार' नाटक मोक्ष-मार्ग की ओर प्रवृत्त कर कर्मजनित विकारों के वमन (बौन) अर्थात् नाश की प्रेरणा देता है, इसके रस-क्षेत्र में विद्वज्जन लवण की भाँति लीन हो जाते हैं, इसमें सम्यक् दर्शन आदि गुणों और मुक्ति-मार्ग की सहज अभिव्यक्ति है, इसकी महिमा को प्रकट करने में इन्द्र भी संकुचित होता है, इसे श्रद्धापूर्वक ग्रहण करनेवाले व्यक्ति पक्षी की भाँति ज्ञान-गगन में उड़ते हैं, इससे विरत प्राणी भव-जाल में उलझ जाते हैं, इसमें स्वर्ण-जैसी कान्तिवाले भाव हैं और विराट् प्रभु की महिमा इसमें विस्तारपूर्वक वर्णित है, जिसे सुनने पर मन के रुद्ध द्वार खुल जाते हैं। इस प्रकार उन्होंने विकारनाश, ज्ञान-प्रेरणा और मोक्ष-प्राप्ति को भक्तिकाव्य की सहज सिद्धियां स्वीकार किया है। बनारसीदास के दृष्टिकोण के सम्यक् परिचय के लिए 'ग्यानकला', 'नाटक आगम', 'सिव-मारग', 'शिवस्वरूप', 'करम कौ करै बौन', 'रस-भौन बुध लौन ज्यों घुलत हैं', 'हीये फाटक खुलत है', 'सरदहि' और 'शब्द अर्थ बिचारसी' प्रयोग व्याख्यासापेक्ष हैं :

(१) प्रथम उद्धरण में 'ग्यानकला' शब्द कवि के रचना-विवेक का परिचायक है। विवेक-सम्पन्न कवि की कृति में ही उन गुणों का समाहार सम्भव है जिनसे सहृदय के ज्ञान-क्षितिज का विस्तार होता है—'याही के जु पच्छी ते उड़त ग्यान गगन में' से यही अभिव्यंजित है। 'नाटक आगम' में भी अध्ययनजनित ज्ञान-साधना को साहित्य-क्षेत्र की सहज प्रवृत्ति माना गया है। 'नाटक' साहित्य की विधा-विशेष है और 'आगम' शास्त्र का पर्याय है; इन दोनों के सहभाव का अर्थ है—साहित्य के लालित्य और शास्त्र की ज्ञानधारा में समन्वय की स्थापना। इस प्रकार बनारसीदास विचार-क्षेत्र की कोरी सिद्धान्तवादिता के समर्थक प्रतीत नहीं होते, उन्होंने भावांचल-परिवेष्टित विचार-सामग्री को ही महत्त्व दिया है। प्रमाता की भावप्रवणता और काव्यानुशीलन से विचारोद्दीपन को उन्होंने एक ही मनःस्थिति की विकास-शृंखला माना है।

(२) 'सिवमारग' का प्रयोग लोकमंगल की सिद्धि के अर्थ में हुआ है। इस लक्ष्य की उपलब्धि तभी सम्भव है जब रचयिता विकार-मुक्त होकर सद्भावभावित काव्य की रचना में प्रवृत्त हो, क्योंकि आत्मपरिष्कार के अभाव में लोक-परिष्कार की प्रेरणा देना सामान्यतः सरल नहीं है; और यदि वाक्छल का आश्रय लेकर कोई ऐसा मुखौटा धारण कर भी ले तो उसकी कृति में अनुभूति की गहनता और प्रेषणीयता का समावेश नहीं हो पाएगा। शुक्ल जी के शब्दों में, "कविता मनुष्य के हृदय को स्वार्थसम्बन्धों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोकसामान्य भावभूमि पर ले जाती है···उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है। इस अनुभूति-योग के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रचनात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है।" (चिन्तामणि, पहला भाग, पृष्ठ १४१) बनारसीदास द्वारा विकार-वमन—करम को करै बौन—पर बल देना मनोविकारों के परिष्कार से कुछ भिन्न है। उन्होंने भक्तिकाव्य को विकारों के उच्छेदन का साधन माना है तथा अरस्तू के विरेचन-सिद्धान्त के अनुरूप उसे विकारग्रस्त मन के परिशोधन में सहायक स्वीकार किया है।

(३) आलोच्य कवि ने 'रस-भौन बुध लौन ज्यों घुलत है' में काव्यशास्त्रीय विवेक का सम्यक् परिचय दिया है। वर्ण्य की दृष्टि से उनके काव्य की परिधि में शान्त रस की सामग्री का प्राधान्य है, फलतः प्रस्तुत काव्यांश में सहृदय की रसोन्मुखता का अर्थ हुआ—काव्यगत नैतिक मूल्यों के प्रति भावक के चित्त का द्रवीकरण। 'बुध' से उनका अभिप्राय ऐसे प्रमाता से है जो अपनी तत्त्वाभिनिवेशी दृष्टि से सत् और असत् के द्वन्द्व का निराकरण कर सके; शान्त रस की कविता में अवगाहन से ऐसे प्रमाता का आनन्दाभिभूत होना स्वाभाविक है। 'नाटक सुनत हीये फाटक खुलत है' द्वारा भी इसी मन्तव्य की पुष्टि होती है। सौन्दर्य-तत्त्व और नैतिक मूल्यों की समवेत अभिव्यक्ति का दृष्टिकोण उन्नीसवीं शताब्दी के अंग्रेजी-कवियों को भी इतना ही मान्य रहा है।

(४) भक्तिकाव्य की रचना से मोक्ष-प्राप्ति के विश्वास का भक्तिशास्त्रज्ञ कवियों ने प्रबल समर्थन किया है—बनारसीदास की उक्ति 'बेगि मिटै भवबास बसेरौ' भी इसी परम्परा में आती है। किसी-किसी विद्वान् ने ऐसी काव्योक्तियों के सन्दर्भ में यह शंका प्रकट की है कि "इस प्रयोजन की प्राप्ति काव्य द्वारा सम्भव नहीं है, श्रौत-स्मार्त ग्रन्थों द्वारा भले ही मानी जा सके।" (हिन्दी-रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य, डॉ० सत्यदेव चौधरी, पृष्ठ ११५) किन्तु, भक्तिकाव्य की रचना के समय समाधि-सुख जैसे आनन्द का अनुभव करनेवाले भक्त कवियों के कृतित्व की पृष्ठभूमि में यह मत ग्राह्य नहीं है।

(५) अन्तिम उद्धरण में संसार-चक्र में लिप्त व्यक्तियों के लिए ज्ञानराशि के साक्षात्कार को पापनाशक कहा गया है, किन्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके लिए उनके चित्त में श्रद्धा (सरदहि) तथा शब्दार्थ-चिन्तन की क्षमता का होना आवश्यक है। भक्तिकाव्य के अनुशीलन में भावना और विवेक के समंजन पर बल देना निश्चय ही विवेच्य कवि के प्रौढ़ काव्य-विवेक का परिचायक है।

बनारसीदास ने इसी से सम्बद्ध एक अन्य प्रयोजन 'बालबोध' अर्थात् लोकशिक्षार्थ सरल ग्रन्थ-रचना को भी मान्यता दी है—उनके 'कर्मप्रकृतिविधान' नामक ग्रन्थ के मूल में सिद्धान्त-ग्रन्थों की सुबोध व्याख्या का भाव ही निहित है। पूर्ववर्ती कवियों में नन्ददास, केशव और जान ने काव्य-रचना के इस प्रयोजन को स्वीकृति दी है।

काव्य-हेतु

बनारसीदास ने कवि-वाणी के उन्मेष में वाग्देवी की अनुकम्पा को महत्त्वपूर्ण माना है। 'बनारसीविलास' में 'अजितनाथ जी के छन्द' के आरम्भ में उन्होंने लिखा है: "सरसुति देवि प्रसाद लहि, गाऊँ अजित जिनन्द।" यद्यपि अजितनाथ जी की महिमा के वर्णनार्थ वाग्देवी की कृपा के आह्वान में हेतु की दृष्टि से कोई मौलिकता नहीं है, तथापि वर्ण्य विषय की नवीनता अवश्य ध्यान आकृष्ट करती है। इसी सन्दर्भ में कवि की निम्नलिखित उक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं जिनमें काव्य-प्रवृत्ति को शिव, शिव-पंथ, पार्श्वनाथ, जिनराज और जिन-प्रतिमा का कृपा-फल माना गया है:

(अ) **बंदौं सिव अवगाहना अरु बंदौं सिव पंथ।**
जसु प्रसाद भाषा करौं नाटकनाम गरंथ।। (नाटक समयसार, पृष्ठ १२)

(आ) **तेई प्रभु पारस महारस के दाता अब।**
दीजै मोहि साता दृगलीला की ललक मैं।। (नाटक समयसार, पृष्ठ ५)

(इ) **जिन-प्रतिमा जिन-सारनी, नमै बनारसि ताहि।**
जाकि भक्ति प्रभाव सौं, कीनो ग्रन्थ निबाहि।। (नाटक समयसार, पृष्ठ ४६८)

भक्ति रस (महारस) की अभिव्यक्ति के निमित्त कवि के लिए यह स्वाभाविक ही है कि वह शान्ति (साता) अर्थात् समाहितचित्तदशा की भी कामना करे। शिव और जिनराज के अनुग्रह से काव्य-विवेक की स्फूर्ति तभी सम्भव है जब कवि में संश्लेषण-दृष्टि, आत्मसाक्षात्कार की प्रवृत्ति, अतीन्द्रिय ज्ञान को ग्रहण करने की क्षमता आदि का समुचित अन्तर्भाव हो। कवि का कर्तृत्व उसकी समाधि-दशा पर निर्भर करता है, जिसके लिए प्रबल आस्था और दृढ़ संकल्प-शक्ति आवश्यक हैं। शिवार्चन के रूप में बनारसीदास ने जिस आस्था और आस्तिकता को व्यक्त किया है, वह परम्परागत संस्कारों का फल है, जिसकी काव्य-जगत् में प्रायः अभिव्यक्ति मिलती है। यथा:

(अ) **सम्भु प्रसाद सुमति हिअं हुलसी, रामचरितमानस कवि तुलसी।** (रामचरितमानस, पृष्ठ १८)

(आ) **काटे संकट के कटक, प्रथम तिहारी गाथ।**
मोहि भरोसो है सही, दै बानी गननाथ।। (छत्रप्रकाश, लाल, पृष्ठ १)

जैन धर्मावलम्बी होने के कारण वे मात्र इसी से संतुष्ट नहीं हुए, पार्श्वनाथ जिनराज के प्रति भी उन्होंने वैसी ही श्रद्धा दिखाई है।

प्रतिभा की अवतारणा में दिव्य प्रेरणा का चाहे कितना भी योग हो, उसके लिए पौरुषेय प्रयत्न भी उतने ही अपेक्षित हैं—देवतादि की वन्दना तो मनःसंघटन के लिए निमित्त-मात्र है। यह जिज्ञासा स्वाभाविक है कि आस्तिकता-प्रेरित कवि-प्रतिभा के मूल में विवेक की प्रबलता रहती है या भावुकता की? सामान्यतः भक्तिकाव्य में भाव-प्रवणता का प्राबल्य रहता है, किन्तु उसकी पृष्ठभूमि में कहीं-न-कहीं विवेक की भूमिका भी अवश्य रहती है। जब कवि द्वारा रचना के आरम्भ में देवविशेष की आराधना की जाती है, तब उसके ज्ञान और भावना का उत्तरोत्तर आधार-आधेय-क्रम से विकास होता है। भक्त की भाँति वह केवल भावुकता के अंचल से नहीं लिपटा रहता, अपितु कृतविद्य होने के कारण उसकी प्रज्ञा में कला, धर्म, दर्शन और विज्ञान भी सन्निहित रहते हैं।

विवेकाश्रयी होने पर भी कवि अन्ततः भाव-लोक-विहरण का अभिलाषी होता है, इसीलिए भावुक और सहृदय कवि प्रायः अहंकार-भाव से परिचालित नहीं होते। उन्हें अपनी काव्य-कला और वर्णन-क्षमता पर अभिमान नहीं होता:

(अ) **मैं अल्प बुद्धि नाटक आरंभ कीनो।** (नाटक समयसार, पृष्ठ १३)

(आ) **अलप कवीसुर की मतिधारा।** (नाटक समयसार, पृष्ठ ५२५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(इ) **तुच्छ मति मोरी तामैं कविकला थोरी।** (नाटक समयसार, पृष्ठ ५२६)

(ई) **समयसार नाटक अकथ, कवि की मति लघु होई।** (नाटक समयसार, पृष्ठ ५२६)

उपर्युक्त उक्तियों में बनारसीदास ने जिस विनम्रता को प्रकट किया है उसके मूल में उनकी भाव-प्रवणता असन्दिग्ध है। वाच्यार्थ में अल्प, तुच्छ और लघु कवि-प्रतिभा की सीमाओं के द्योतक हो सकते हैं, किन्तु वस्तुतः यहाँ प्रतिभा की अवमानना नहीं हुई है क्योंकि कवि-कृति की विमलता सदैव विवेक और अनुभूति-वैशद्य के विनयपूर्ण समन्वय पर निर्भर करती है।

प्रतिभा के उन्मेष में गुरु-कृपा का अवलम्बन भी प्रसिद्ध काव्य-हेतु है। बनारसीदास ने गुरु के मार्ग-दर्शन की महिमा को इन शब्दों में प्रकट किया है :

ज्यों गरंथ को अरथ कह्यौ गुरु त्योंहि,
हमारी मति कहिवे कों सावधान भई है। (नाटक समयसार, पृष्ठ १४)

बनारसीदास के पूर्ववर्ती जैन कवि वसुनन्दि ने भी आचार्य श्री नन्दि से नेमिचन्द्र तक की गुरु-परम्परा का श्रद्धापूर्ण स्तवन किया है। (देखिए 'वसुनन्दि श्रावकाचार', पृष्ठ १४२) ऐसे स्थलों पर गुरु के महत्त्व की स्वीकृति के दो कारण सम्भव हैं—एक तो यह कि ज्ञान-साधना और तत्सम्बद्ध समस्याओं के समाधान के लिए गुरु की सहायता अपेक्षित होती है और दूसरे यह कि निरन्तर साहचर्य के परिणाम-स्वरूप उनके गुणों के प्रति आस्था-बुद्धि विकसित हो जाती है। इनमें से प्रथम पक्ष उपयोगितावादी दृष्टिकोण पर आधारित है और दूसरा परम्परागत संस्कारों की देन है—एक का सम्बन्ध बुद्धि से अधिक है, तो दूसरे का हृदय से। काव्य-सर्जना में इन दोनों का प्रत्यक्ष योग रहता है।

पूर्ववर्ती श्रेष्ठ कवियों की रचनाओं के मनोयोगपूर्ण अनुशीलन, आध्यात्मिक ग्रन्थों में श्रद्धापूर्वक अवगाहन आदि भी कवि-प्रतिभा के प्रेरक और संस्कारक साधन हैं—कल्पना-सामर्थ्य तथा उक्ति-कौशल का समुचित विन्यास करने पर इनके माध्यम से प्रभावी काव्य-सृष्टि असंदिग्ध है। बनारसीदास की उक्तियों में इसी तथ्य का संकेत मिलता है :

(अ) **इनके नाम भेद विस्तार, वरणहुँ जिनवानी अनुसार।** (बनारसीविलास, मार्गणा विधान, पृष्ठ १०४)

(आ) **जिनवाणी परमाण कर, सुगुरु सीख मन आन।**
कछुक जीव अरु कर्म को, निर्णय कहों बखान॥ (बनारसीविलास, कर्मछत्तीसी, पृष्ठ १३६)

बनारसीदास द्वारा जिनवाणी को प्रमाण मानना वैष्णव भक्त कवियों की वेदादि ग्रन्थों के प्रति आस्था के समकक्ष है—प्रथम उद्धरण में जैन मत के चौदह मार्गों तथा बासठ शाखाओं में निर्धारणार्थ तथा द्वितीय उक्ति में कर्म-निर्णय के लिए जिनवाणी सम्बन्धी ग्रन्थों के उपयोग का परामर्श काव्य-चक्र का स्वाभाविक अंग है; आगम का अनुसरण करनेवाले ऐसे कवियों को राजशेखर ने 'शास्त्रार्थ कवि' की संज्ञा दी है। (देखिए 'काव्य मीमांसा', पंचम अध्याय, पृष्ठ ४२, ४७)। साहित्य में धार्मिक मतवाद की अभिव्यक्ति पर्याप्त विवादास्पद रही है, फिर भी धार्मिक आस्थाओं और प्रचलित सामाजिक संस्कारों का कवि-कर्तृत्व पर प्रभाव अवश्य पड़ता है।

काव्य-वर्ण्य

काव्य में वर्णनीय विषयों के सन्दर्भ में बनारसीदास ने अनुभूत सत्य की अभिव्यक्ति पर बल दिया है। वस्तुतः काव्य-वर्ण्य की दीप्ति विषय की प्रामाणिक प्रस्तुति पर निर्भर करती है। यह प्रामाणिकता लोकदर्शनादि के आधार पर स्वतः अनुभूत भी हो सकती है और आप्त वाक्यों के कारण श्रद्धाप्रेरित भी। बनारसीदास ने सत्काव्य में इन दोनों दृष्टियों के निर्वाह पर बल दिया है और काव्य में आरोपित मिथ्या स्थितियों, दुराग्रह, अभिमान आदि को स्थान देने का विरोध किया है। उनका लक्ष्य सत्य की तटस्थ अभिव्यक्ति करना था, फलस्वरूप उन्होंने उसके साक्षात्कार में बाधा पहुँचानेवाले कल्पना-विलास के प्रति अनास्था प्रकट की है :

(अ) **कलपित बात हियें नहिं आनै, गुरु परम्परा रीति बखानै।**
सत्यारथ सैली नहिं छंडै, मृषावाद सों प्रीति न मंडै॥ (नाटक समयसार, पृष्ठ ५३०)

(आ) **मृषाभाव रस बरनै हित सौं, नई उकति उपजावै चित सौं।** (नाटक समयसार, पृष्ठ ५३०)

(इ) **ऐसे मूढ़ कुकवि कुधी, गहै मृषा मग दौर।**
रहै मगन अभिमान में, कहै और की और॥ (नाटक समयसार, पृष्ठ ५३२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ई) **वस्तु सरूप लखै नहीं बाहिज द्रिष्टि प्रवांन।**
मृषा विलास विलोकि कै करै मृषा गुनगान ॥ (नाटक समयसार, पृष्ठ ५३३)

(उ) **मिथ्यावंत कुकवि जे प्रानी, मिथ्या तिनकी भाषित वानी।** (नाटक समयसार, पृष्ठ ५३४)

भक्त कवि होने के नाते बनारसीदास ने काव्य में नैतिक मूल्यों के निर्वाह पर विशेष बल दिया है; उन्होंने उन कवियों की भर्त्सना की है जो बाह्य दृष्टि के फलस्वरूप कल्पनाविलास में मग्न रहते हैं और मिथ्या वर्णन को ही 'नई उकति' मान बैठते हैं। ये सन्दर्भ कवि की उपयोगितावादी दृष्टि के परिचायक हैं और इनके आधार पर साहित्य का अध्ययन एकांगी ही रहेगा। साहित्य के आस्वादन में सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टि भी इतनी ही अपेक्षित है। काव्य-क्षेत्र में अध्ययन की ये दोनों सरणियाँ समानान्तर रूप से प्रचलित रही हैं, किन्तु कवि-कर्तृत्व का सम्यक् मूल्यांकन इनके समन्वय पर ही निर्भर करता है।

अनुभूत सत्यों और नैतिक मूल्यों पर बल देने के फलस्वरूप बनारसीदास ने काव्य में भक्ति-निरूपण का भी समर्थन किया है। भक्ति-भाव की अभिव्यक्ति कभी आरती के रूप में और कभी सुन्दर वाणी द्वारा ईश्वर के प्रति सश्रद्ध नमन के रूप में होती है :

"कबहू आरती ह्वै कै प्रभु सनमुख आवै,
कबहू सुभारती ह्वै बाहरि बगति है।" (नाटक समयसार, पृष्ठ १५)

इसीलिए बनारसीदास ने ब्रह्म-महिमा-वर्णन और परमार्थ-पंथ-निरूपण में ही भक्त कवि के कृतित्व की सार्थकता मानी है। 'जिनसहस्रनाम,' 'वेदनिर्णयपंचासिका', और 'ध्यानबत्तीसी' में उन्होंने भक्ति-तत्त्व की वर्णनीयता को इन शब्दों में प्रकट किया है :

(अ) **महिमा ब्रह्मविलास की, मो पर कही न जाय।**
यथाशक्ति कछु वरणई, नामकथन गुण गाय॥ (बनारसीविलास, पृष्ठ १६)

(आ) **तिनके नाम अनन्त, ज्ञानगर्भित गुनगूझे।**
मैं तेते वरणये, अरथ जिन जिनके बूझे॥ (बनारसीविलास, पृष्ठ १००)

(इ) **यह परमारथ पंथ गुन अगम अनन्त बखान।**
कहत बनारसि अल्पमति, जथासकति परवान॥ (बनारसीविलास, पृष्ठ १४३)

यद्यपि यहाँ कवि ने विनम्रतावश स्वयं को 'अल्पमति' कहा है, तथापि आत्मसाक्षात्कारजनित भाव-वर्णन और ज्ञानगर्भित तत्त्व-चिन्तन में उनकी प्रवृत्ति असन्दिग्ध है। इसीलिए उन्होंने मुक्ति-मार्ग की ओर प्रवृत्त करनेवाले शुद्ध संकल्प और शुद्ध व्यवहार की अनुभवप्रेरित अभिव्यक्ति पर बल दिया है और परम तत्त्व की व्याख्या के संदर्भ में 'समयपाहुड़' में शिवमार्ग के कारणभूत गुण-संस्थानों का वर्णन न पाकर 'नाटक समयसार' में इस प्रकरण का समावेश किया है :

परम तत्त परचे इस मांही, गुनथानक की रचना नाहीं।
यामैं गुनथानक रस आवै, तो गरंथ अति सोभा पावै॥
इह विचारि संछेप सों, गुनथानक रस चोज।
बरनन करै बनारसी, कारन सिव-पथ खोज॥ (नाटक समयसार, पृष्ठ ४७०-४७१)

भक्ति-भाव की प्रबल प्रेरणा के फलस्वरूप बनारसीदास ने शृंगार-काव्य की प्रत्यक्ष अवमानना की है—किशोरावस्था में लिखित शृंगारप्रधान रचना के सन्दर्भ में, जिसे बाद में नष्ट कर दिया था, उन्होंने स्वयं को 'कुकवि' और 'मिथ्या ग्रन्थकार' कहकर यही भाव प्रकट किया है :

तामैं नवरस रचना लिखी, पै बिसेस बरनन आसिखी।
ऐसे कुकवि बनारसि भए, मिथ्या ग्रन्थ बनाए नए॥ (अर्ध कथानक, पृष्ठ १७)

शृंगार-काव्य का निषेध करने पर भी बनारसीदास ने प्रशस्तिकाव्य का समर्थन किया है, जो उन-जैसे संकल्पमना भक्त के लिए सर्वथा विचित्र प्रतीत होता है, किन्तु विशेषता यह है कि उन्होंने स्वार्थप्रेरित राजप्रशस्ति के स्थान पर चित्तवैशद्य पर आधारित मित्रप्रशस्ति को गौरव दिया है। व्यवसाय-क्षेत्र में सहायता करनेवाले स्नेही मित्र नरोत्तमदास के लिए भाट-वृत्ति अपनाने में भक्त कवि बनारसीदास को कोई संकोच नहीं है :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रीझि नरोत्तमदास कौ, कीनो एक कवित्त।
पढ़ै रैन दिन भाट सौ, घर बजार जित कित्त ।। (अर्धकथानक, पृष्ठ ४४)

काव्य-शिल्प

बनारसीदास ने काव्य-शिल्प के संयोजक तत्त्वों के विवेचन में बहुत कम रुचि ली है—उनका विवेचन काव्य-भाषा और छन्द के विषय में संक्षिप्त प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष विचार-प्रस्तुति तक सीमित है।

(क) **काव्य-भाषा** : आलोच्य कवि ने काव्य-भाषा के सन्दर्भ में वर्णविन्यास, शब्द-सौष्ठव, अर्थ-गरिमा आदि के महत्त्व का प्रत्यक्ष कथन किया है। यथा :

(अ) छंद सबद अच्छर अरथ कहै सिद्धान्त.प्रवांन।
जो इहि विधि रचना रचै सो है सुकवि सुजान ।। (नाटक समयसार, पृष्ठ ५३०)

(आ) वरण भंडार पंच वरण रतन सार,
भौर ही भंडार भावबरण सुछंदजू।
वरण तें भिन्नता सुवरण में प्रतिभासै,
सुगुण सुनत ताहि होत है अनंद जू। (बनारसीविलास, ज्ञान बावनी, पृष्ठ ८९)

(इ) एकारथवाची शब्द अरु द्विरुक्ति जो होय।
नाम कथन के कवित में, दोष न लागे कोय ।। (बनारसीविलास, जिनसहस्रनाम, पृष्ठ ३)

प्रथम उद्धरण में शब्द-विन्यास-कौशल पर बल देने के साथ ही कवि ने द्वितीय उक्ति में भी वर्ण-लालित्य एवं काव्य-गुणों के संयोजन पर बल दिया है। 'गुण' से उनका अभिप्राय शब्द-गुण और अर्थ-गुण दोनों से प्रतीत होता है क्योंकि उनके कृतित्व में सामान्यतः जितना बल अर्थ-गाम्भीर्य पर रहा है, भावानुसारिणी भाषा के प्रति भी वे प्रायः उतने ही सजग रहे हैं—यह दूसरी बात है कि उनका प्रमुख विषय अध्यात्म-तत्त्व-निरूपण है और उसकी अभिव्यक्ति सर्वत्र काव्य की सहज-परिचित सरस शब्दावली में नहीं हो सकी है। द्वितीय अवतरण में 'पंच वरण रतन सार' प्रयोग भी ध्यान देने योग्य है जिससे उनका अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि मानव-मन के विभिन्न भावों को रूपायित करने में विभिन्न वर्णों के समाहार से निर्मित भावपोषक शब्दावली का उल्लेखनीय योग रहता है। तृतीय उद्धरण में भी कवि की भाषा-विषयक सजगता का स्पष्ट संकेत विद्यमान है। ईश्वर-गुणगान-सम्बन्धी कविता में द्विरुक्ति अर्थात् अर्थगत पुनरुक्ति के दोषत्व का परिहार मानकर उन्होंने प्रकारान्तर से यह भाव व्यक्त किया है कि काव्य में सामान्यतः पुनरुक्त दोष का समावेश नहीं होना चाहिए। इस उक्ति में केवल भक्ति-भावना का प्रभाव स्वीकार करना उचित नहीं होगा, सन्दर्भ-विशेष में पुनरुक्त की अदोषता का प्रतिपादन रुद्रट आदि आचार्यों ने भी किया है। यथा :

यत्पदमर्थेऽन्यस्मिंस्तत्पर्यायोऽथवा प्रयुज्येत।
वीप्सायां च पुनस्तन्न दुष्टमेवं प्रसिद्धं च ।। (काव्यालंकार, ६। ३२, पृष्ठ १७२)

(ख) **काव्यगत छन्द-योजना** : छन्द के सम्बन्ध में बनारसीदास का मत-प्रतिपादन अत्यन्त सीमित है। उन्होंने कवित्त आदि छन्दों के प्रयोग द्वारा वाणी की विविधतापूर्ण अभिव्यक्ति में ही कवि-कर्म की सार्थकता मानी है :

कौरपाल बानारसी मित्र जुगल इकचित्त।
तिनहिं ग्रन्थ भाषा कियो, बहुविधि छन्द कवित्त ।। (बनारसीविलास, सूक्त मुक्तावली, पृष्ठ ७१)

'समयसार' नाटक में भी उन्होंने छन्द-वैविध्य की ओर समुचित ध्यान दिया है और ग्रंथान्त में अपने द्वारा प्रयुक्त छन्दों (दोहा, सोरठा, चौपाई, कवित्त, सवैया, छप्पय, कुंडलिया आदि) का विवरण अंकित किया है। (देखिए 'नाटक समयसार', पृष्ठ ५४१)। इसी प्रकार "छन्द भुजंगप्रयात में अष्टक कहौं बखान" (बनारसीविलास, शारदाष्टक, पृष्ठ १६५) जैसी उक्तियों द्वारा भी उन्होंने विविध छन्दों के प्रति अपनी अभिरुचि का संकेत दिया है।

काव्य के अधिकारी सहृदय

काव्य-रचना के अधिकारी कवि और काव्यानुशीलन के अधिकारी सहृदय के गुणावगुणों का तुलनात्मक विश्लेषण काव्यशास्त्र का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। कवि की कारयित्री प्रतिभा जो रचना-विधान करती है, सहृदय की भावयित्री प्रतिभा उसी के मूल्यांकन में प्रवृत्त होती है। काव्यानुभूति को ग्रहण करने में असमर्थ अविवेकी पाठक के समक्ष कवि का सम्पूर्ण कृतित्व अरण्यरोदन के समान निष्प्रयोजन होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। बनारसीदास ने 'बावन सतसैया,' 'वेदनिर्णय पंचासिका,' और 'कर्मप्रकृति विधान' में क्रमशः इसी दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया है :

(अ) बावन कवित्त एतौ मेरी मति मान भए।
हंस के सुभाव ग्याता गुण गहि लीजियो।।
(आ) भवथिति जिन्हने घटि गई तिनको यह उपदेस।
कहत बनारसिदास यों मूढ़ न समुझै लेस।।
(इ) अल्पबुद्धि जैसी मुझ पाहिं, तैसी मैं वरनी इस माहिं।
पंडित गुनी हँसो मत कोय, अल्पमती भाषा कवि होय।।

यहाँ काव्यास्वाद में सात्त्विकी बुद्धि की भूमिका को विशेष महत्त्व दिया गया है। प्रथम और तृतीय उद्धरणों में बनारसीदास ने प्रमाता में जिस नीरक्षीर-विवेकी प्रवृत्ति की कामना की है उसके अभाव में अनधिकारी व्यक्ति कवि के अभिप्राय की गम्भीरता को समझने में असमर्थ रहते हैं—'मूढ न समुझै लेस' से उनका यही तात्पर्य है। भक्तिक्षेत्र में तत्त्व-बोध के इच्छुक साधक जिस प्रकार सांसारिक विषयों से विरत रहते हैं, उसी प्रकार नैतिक-आध्यात्मिक अनुभूतियों से सम्पन्न कविता का अध्ययन करनेवालों से भी यह अपेक्षित है कि वे वर्ण्य के अनुरूप विवेकपूर्ण अर्थ-ग्रहण और औचित्य-दृष्टि को सर्वोपरि महत्त्व दें। 'मेरी मति' और 'ग्याता' के समानान्तर प्रयोग से यह भी लक्षित होता है कि हंसवत् विवेक कवि और सहृदय का समान गुण है—विमल ज्ञान के अभाव में न तो कवि की अनुभूति और अभिव्यक्ति में तारतम्य सम्भव होगा और न सहृदय की अर्थग्रहण-क्षमता का सम्यक् विकास हो सकेगा। आरम्भ में सभी सहृदय विवेकी नहीं होते, विवेक का उदय होने पर जब बुद्धि का क्रमशः परिष्कार होता है तभी वे रचना के ग्राह्य-अग्राह्य गुणावगुणों की समीक्षा में सफलतापूर्वक प्रवृत्त होते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बनारसीदास की काव्य-दृष्टि सन्त कवियों की भांति स्वानुभूति और अध्यात्म-तत्त्व से अनुप्राणित रही है। उन्होंने काव्य में अनुभूत सत्य और मर्यादाबद्ध भाव-वर्णन पर बल दिया है और मनोविकार-नाश तथा मोक्ष-लाभ को सत्काव्य के सहज फल स्वीकार किया है। आस्तिक बुद्धि के कारण उन्होंने अपनी काव्य-प्रतिभा का श्रेय स्वयं को न देकर उसे देवी सरस्वती और पार्श्वनाथ जिनराज की अनुकंपा से स्फूर्त माना है। इसमें संदेह नहीं कि संक्षिप्त और स्फुट रूप में उपलब्ध होने पर भी उनके विचार संयत और महत्त्वपूर्ण हैं।

महाकवि बनारसीदास साम्प्रदायिक पूर्वाग्रहों से मुक्त सन्त स्वभाव के पुरुष थे। उस महाप्राण की सरलता एवं शालीनता के कारण अनेक किंवदन्तियाँ उनके विषय में प्रचलित हो गई हैं। जैन धर्म की शास्त्र सभाओं में प्रायः धर्माचार्यों से लेकर विद्वत् समाज तक उनके जीवन की अनेक घटनाओं को प्रेरक कथाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया करता है।

सरल एवं सौम्य व्यक्तित्व के धनी कवि श्री बनारसीदास जी का जन्म श्वेताम्बर जैन से सम्बन्धित श्रीमाल कुल में हुआ था। भारतीय भक्ति साहित्य के प्रेरक स्वरों से प्रभावित होकर उन्होंने अपने को सीमित दायरे से बाँधे नहीं रखा। अपनी काव्य-साधना में उन्होंने दिगम्बर मुनि के २८ मूल गुणों का वर्णन चौपाइयों और दोहों में किया है। दिगम्बर मुनियों की झाँकी उनके काव्य में दृष्टिगोचर होती है :

"उत्तम कुल श्रावक संचार, तासु गेह प्रासुक आहार।
भुंजै दोष छियालिस टाल, सो मुनि बन्दों सुरति सँभाल।।
भूमि शयन मंजन तजन, वसन त्याग कच लोच।
एक बार लघु असन, थिति-असन दंतबन मोच।।
द्विविधि परिग्रह, दशविधि, जान, संख, असंख्य अनन्त बखान।
सकल संग तज होय निरास, सो मुनि लहै मोक्ष पद वासा।।
लोक लाज विगलित भयहीन, विषय वासना रहित अदीन।
नगन दिगम्बर मुद्राधार, सो मुनिराज जगत सुखकार।।
सघन केस गर्भित मलकीच, त्रस असंख्य उतपति तसु बीच।
कच लुंचै यह कारण जान, सो मुनि नमहुं जोर जुग पान।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org